

## जीवन—साहित्य और भारतीय मूल्य

डॉ. रचना बिमल,

स. प्रोफेसर,  
सत्यवती महाविद्यालय,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय संस्कृति मानव मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं के उन आदर्शात्मक गुणों का समुच्चय है जो प्रकृति से निःसृत होते हैं। 'मूल्य' ही किसी को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। चाहे वह मनुष्य हो या वस्तु। मूल्य शब्द का निर्माण संस्कृत की मूल धातु में यत् प्रत्यय लगाने से हुआ है जिसका अर्थ—लागत, मजदूरी, मोल, वेतन या पूंजी से लिया जाता है किन्तु मानवीय संदर्भों में मूल्य का अर्थ उन उच्च आकांक्षाओं, आदर्शों, धारणाओं, मान्यताओं से गृहित किया जाता है जो मनुष्य को पशु योनि से विलग कर उसे 'मानव' होने का दर्जा प्रदान करती हैं। इनके माध्यम से मनुष्य जहाँ अपने जीवन को गौरवशाली बनाता है वहीं मूल्य ही किसी संस्कृति को उन्नत बनाते हैं। इसी कारण मूल्य शब्द आज "अर्थशास्त्र की सीमा से निकलकर दर्शन, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश कर गया है।"<sup>1</sup> मूल्यों की उत्पत्ति न तो व्यक्ति करता है ना ही ईश्वर बल्कि देश, काल, परिस्थिति त्रय के अनुभवों से गुजरते हुए कोई 'समाज' इन्हें सृजित और स्वीकृत करता है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार और चिंतक अज्ञेय इस पर टिप्पणी करते हैं कि— "जिस समाज में कोई ऐसे मूल्य नहीं है जिनके लिए जिया जाता है और जिनके लिए मरा भी जा सकता है वह समाज अपने मन के साथ बलात्कार की स्थिति स्वीकार चुका है। समाज को पुलिस, सरकार या संसद नहीं बचाती, समाज को अपनी शक्ति बचाती है जो उन मूल्यों से मिलती है जिनके लिए वह जीता है।"<sup>2</sup> अतः मानव मूल्यों को ही किसी समाज और संस्कृति की अर्थवत्ता निरूपित करने का श्रेय

दिया जा सकता है और इनका विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है।

मनुष्य ने जब से आत्मसाक्षात्कार के द्वारा उचित, अनुचित पर विचार कर अपने जीवन को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का विचार किया तभी से मूल्य उसके जीवन का अंग बन गए। इसी गुणसूत्र धर्मिता ने 'मानवता' को जन्म दिया जो देश, काल, धर्म, समाज आदि के विभेदों के ऊपर उठकर सार्वभौमिक होती है। यही मानवता "वसुधैव कुटुम्बकम्" के भाव की जननी है जो समस्त चराचर जगत की मंगलकामना से जुड़ी हुई है। जहाँ आत्म से सर्वात्म तक की यात्रा सर्वजन हिताय का पाथेय लेकर पूर्ण की जाती है। जीवन मूल्यों की इस महत्ता पर हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियित्री महादेवी वर्मा कहती हैं कि— "वास्तव में थोड़े से सिद्धान्त में जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है, हम उन्हीं को जीवन—मूल्य कहते हैं।"<sup>3</sup>

यद्यपि भारतवर्ष में 'मूल्य' को केन्द्र में रखकर चिंतन पाश्चात्य दर्शन की तर्ज पर कुछ वर्षों से ही प्रारम्भ हुआ है किन्तु प्राचीन भारतीय चिंतन और यहाँ तक कि दर्शन परम्परा भी मूल्य निरपेक्ष कभी नहीं हुई। सत्य तो यह है कि भारतीय चिंतन एवं दर्शन का उद्गम ही मूल्यगत चिंताओं से हुआ है। बौद्धिक जिज्ञासाएँ भी बेशक चिन्तन का आधार रही हैं लेकिन भारतवर्ष में दर्शन चिंतन कभी भी बुद्धि का खेल मात्र नहीं रहा है। भारतीय चिंतन मनुष्य के बौद्धिक संदेहों का समाधान करके मात्र बौद्धिक संतुष्टि ही प्रदान

नहीं करता बल्कि इस प्रयोजन की पूर्ति हेतु समीचीन जीवन-पद्धति भी प्रदान करता है। इसी परम्परा में हमारे मनीषी दार्शनिकों ने भी मूल्यों को समझने और प्राप्त करने के लिए सर्वस्व अर्पित किया था। हमारे यहाँ तत्त्व-मीमांसा कभी भी बौद्धिक विलास के लिए कल्पित नहीं की गई बल्कि इसे विकसित करने का सदैव मूल्यगत आधार विद्यमान रहा है। ऐसी ज्ञान-मीमांसा या तत्त्व-मीमांसा जो मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से अछूती रह केवल बुद्धि का वाग् विलास मात्र हो उसके लिए प्राचीन काल से ही 'कौए के दाँत गिनना' कहकर उपहास उड़ाया गया। प्राचीन भारत में तो साहित्य-सृजन भी मूल्याश्रित होकर ही किया जाता था। हमारे दार्शनिकों ने जब भौतिक जगत् और जीवन का तात्त्विक विवेचन करना आरम्भ किया तो उन्होंने पाया कि भौतिक जगत् और जीवन दोनों ही कुछ अंशों में दोषपूर्ण हैं। हमारे जीवन और जगत् की स्थिति जैसी दिखाई देती है, वह संतोषजनक नहीं कही जा सकती। जीवन और जगत् दुःख, अज्ञान, मोह, अन्याय, क्षणभंगुरता से ग्रसित है। भारतीय चिंतन की शाखाएँ-प्रशाखाएँ भी इन्हीं अभद्र संवृत्तियों से मुक्ति पाने के लिए जूझती रही। बौद्ध दर्शन का तो जन्म ही 'दुःख निवृत्ति' के लिए हुआ। बुद्ध के अनुसार सभी कुछ दुःखमय है- सर्वं दुःखम्। सांख्य दर्शन में भी त्रिविध दुःखों - आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक की विवेचना विद्यमान है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणी कार्मिक बंधनों में जकड़ा हुआ है, जिससे संसार में दुःख की व्याप्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी मोह और अकर्मण्यता को दुःखों का मूल बताया गया है। गाँधी जी की दृष्टि में अन्याय मनुष्यता की सबसे बड़ी समस्या है। जीवन से जुड़ी इन सभी व्यावहारिक समस्याओं ने हमारे मनीषियों को सोचने पर मजबूर किया लेकिन यह चिंतन का आरम्भिक सोपान था अंतिम नहीं। दुःख और अज्ञान, अकर्मण्यता और अज्ञान जैसे नकारात्मक पक्षों की विवेचना के उपरान्त हमारे मनीषी

दार्शनिक उनसे मुक्त होने के उपाय भी हमें प्रदान करते हैं।

भारतीय दर्शन एवं चिंतन में अभद्र से भद्र की ओर प्रस्थान मूल्यगत प्रस्थान नहीं है जो विमूल्यों से युक्त संसार में से गुजरते हुए मूल्यों के आलोक में पहुँचाने का महती कार्य करते हैं। वैदिक प्रार्थना- 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा मृतंगमय'- का सार भी विमूल्य अर्थात् (disvalue) से मूल्य (value) की ओर अग्रसर होने की प्रार्थना है। आरम्भिक वैदिक ऋचाओं में अनेक ऋचाएँ ऐसी हैं जो ऊपरी तौर पर तो प्रकृति के प्रति आश्चर्य प्रकट करती हैं लेकिन वास्तव में यह आश्चर्य यानि जिज्ञासा उस आध्यात्मिक असंतोष की ओर संकेत करती है जो मूल्यों की अन्वेषणता को वरीयता देता है। आदिग्रंथ ऋग्वेद की ऋत और सत्यपरक अवधारणाएँ और उनका कर्म-सिद्धान्त भी वैश्विक संरचना में हमें मूल्यों की ही पहचान कराते हैं। वेदों में व्याप्त आत्मन् की अवधारणा जो ब्रह्म के समानार्थक मानी गई है, मूल्यपरक अवधारणा ही है। इस अवधारणा में 'मूल्य' वे आध्यात्मिक मूल्य है जिनकी अनुभूति की जानी चाहिए। इस अनुभूति को प्राप्त करने के लिए ऋग्वेद से लेकर संत काव्य तक में अनेक उपाय बताए गए हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है- "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय प्रियो भवति"<sup>4</sup> अर्थात् आत्मन् पुत्र से भी अधिक प्रिय है, अर्थ से अधिक प्रिय है और अंतर्तर है। एक स्त्री को भी उसका पति, पति-रूप में प्यारा नहीं होता बल्कि वह भी 'आत्मनः कामाय' है। संक्षिप्त किन्तु सरल शब्दों में कहें तो मनुष्य के लिए जो सर्वाधिक मूल्यवान है वह उसके अन्तर्मन में ही विद्यमान है और वहीं उसका शुभेच्छु है। बाह्य जगत् में तो सच्चा शुभेच्छु मिलना दुर्लभ होता है। भौतिक जगत् के दुःखों से मुक्ति का मार्ग जो अत्यंत मूल्यवान है, वह अन्तर के कपाटों में बंद है जिन्हें खोलकर ही मनुष्य को मुक्ति मिलती है।

बौद्ध दर्शन का भी प्रथम आर्य—सत्य 'दुःख' अवश्य है किन्तु यह अंतिम आर्य—सत्य नहीं है। बुद्ध के अनुसार सारा संसार दुःखमय है। बुद्ध दुःख के कारणों को खोज कर, दुःख निरोध—मार्ग की ओर भी संकेत करते हैं। सांख्यदर्शन भी केवल तीन प्रकार के दुःखों का प्ररूप—विज्ञान ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि इन दुःखों से छुटकारा पाने का तत्त्व—ज्ञान भी देता है। सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष जब तक स्वयं को प्रकृति से अलग नहीं करता तब तक उसे दुःखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। जैन दर्शन दुःख का अंतिम कारण कर्म—बन्धन मानता है। कर्मों के क्षय से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष प्राप्ति के लिए जैन दर्शन 'सम्यक्ता' पर बल देते हुए सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य 'त्रीरत्नों' की व्यवस्था करता है। साहित्य में देखें तो महाभारत का प्रमुख पात्र अर्जुन भी युद्ध भूमि में मोहग्रस्त हो जाता है। गीता का आरम्भ अर्जुन के इसी मोह और अकर्मण्यताग्रस्त भाव के साथ होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को इन अभद्र भावों से मुक्त होने के लिए 'निष्काम—कर्म' का ज्ञान देते हैं। आधुनिक काल में इसी परम्परा का अनुपालन करते हुए गाँधी जी भी सामाजिक स्थितियों के अन्याय का प्रतिकार करने के लिए सत्याग्रह का उपाय बताते हैं। कुल मिलाकर मूल्य चाहे किसी भी दार्शनिक शाखा की कोख से निकले हों, यदि वे मनुष्य मात्र का कल्याण करते हैं तो वे मानवीय मूल्य कहलाते हैं। आगे चलकर यही मूल्य ही मानव को गरिमा प्रदान करते हैं।

भारतीय चिंतनधारा के अनुसार मूल्यों को धारण करने वाला व्यक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। मूल्य एक ऐसी अधोषित आचार संहिता है, जिसका अनुपालन करने वाले मनुष्यों का समाज ही सभ्य, शिष्ट और सुसंस्कृत समाज कहलाता है। मूल्य चिंतकों ने मूल्यों के अनेक आयामों, प्रकारों, दशाओं आदि का विवचेन करते हुए उनका वर्गीकरण किया है, जिनमें प्रमुख है—

1. शाश्वत मूल्य और परिवर्तनशील मूल्य
2. वैयक्तिक मूल्य और सामाजिक मूल्य
3. भौतिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य
4. नैतिक मूल्य और सौंदर्यात्मक मूल्य इत्यादि।

शाश्वत मूल्यों को ही कालजयी कहा जाता है। इन मूल्यों पर किसी भी स्थिति में परिवर्तन स्वीकार नहीं होगा। दया, ममता, करुणा, परोपकार, सात्विक प्रेम जैसे मूल्य शाश्वत मूल्यों की श्रेणी में आते हैं, जिन पर समय का घर्षण प्रभाव नहीं डाल पाता। इन मूल्यों की आदर्शात्मक आभा को धारण करने पर ही सामान्य मानव भी महापुरुषों की श्रेणी में आ सकता है। भारतीय दर्शन में जीवात्मा इन्हीं मूल्यों को अंगीकृत कर परमात्मा का अंग बन मोक्ष की प्राप्ति करती है। वैदिक काल के आख्यानो, श्रीराम एवं श्रीकृष्ण जी के जीवन चरितों, भक्तिकाल के संतो, आधुनिक काल के महापुरुषों को प्रतिष्ठा के सर्वोच्च शिखरों पर शाश्वत मूल्य धर्मिता ने ही पहुँचाया है। ध्यातव्य तथ्य यह है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों के चिंतन में 'मूल्य' शब्द कहीं भी परिभाषित नहीं मिलता क्योंकि मूल्य वहाँ एक धारणा है और किसी भी धारणा को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। भारतीय साहित्य परम्परा में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग आधुनिक युग से पूर्व नहीं हुआ है। हाँ भारतीय दर्शनशास्त्र में जिस चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की चर्चा की गई है उसे 'वर्तमान के मूल्य' शब्द के समकक्ष माना जा सकता है। भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ से अभिप्राय उन प्रयत्नों से लिया जाता था जिनसे मानव जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। इन पुरुषार्थों में मोक्ष को सर्वोत्तम माना गया है, जिसे प्राप्त करने के लिए ही मानव को मनुष्य देह प्राप्त हुई है। मनुष्य धर्म के आधार पर अर्थ एवं काम अर्थात् लौकिक जीवन में सफलता प्राप्त करते हुए पारलौकिक जीवन को साधने का प्रयास करता है। मानव इन

मूल्यों से अपना हित साधकर जीवन को सफल बनाता है। सरल शब्दों में कहें तो जैसे-जैसे मनुष्य अपने निम्नतर सोपानों से मुक्त होकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है वह अपने सर्वोच्च मूल्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है। 'आत्मानुभूति' ही इस सर्वोच्च मूल्य की सीढ़ी है।

यहाँ मूल्यों और तथ्यों के मध्य का अन्तर समझना भी समीचीन होगा। हमारे दार्शनिकों ने मूल्यों और तथ्यों के बीच अन्तर को भी स्वीकार किया है। तथ्य वस्तुनिष्ठ होते हैं जो देश-काल सापेक्ष अस्तित्व रखते हैं। इसके विपरीत मूल्य वस्तुगत नहीं होते हैं। मूल्यों में आत्मनिष्ठा का तत्त्व सन्निहित होता है। मूल्यों का तथ्यों पर आरोपण हो सकता है, तथ्यों का मूल्यों पर नहीं। उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु की ओर संकेत कर कहा जाए कि यह एक- 'गिलास' है। यह एक तथ्यगत कथन होगा, जो किसी देश-काल में अवस्थित एक वस्तु के संदर्भ में किया गया है किन्तु यदि हम कहें कि- गिलास सुन्दर या उपयोगी है तो यह मूल्यगत निर्णय कहलायेगा। यहाँ हम वस्तु के ऊपर सुन्दरता या उपयोगिता का मूल्य आरोपित कर रहे हैं। तथ्यों और मूल्यों में दूसरा बड़ा अंतर भी विद्यमान है। मूल्य क्योंकि आदर्श होते हैं, इसलिए वे 'चाहिए' की श्रेणी में आते हैं। इस तथ्य को गिलास के उदाहरण से ही समझा जा सकता है। गिलास का उपयोग प्रायः पानी पीने के लिए किया जाता है, यह एक तथ्य है लेकिन जरूरी नहीं कि पानी गिलास से ही पिया जाये। छोटे बच्चों को गोद में लिटाकर कटोरी-चम्मच या बोतल से पानी पिलाया जा सकता है। बड़े लोग हाथ की अँजुरी (ओक) बनाकर भी पानी पी सकते हैं। यानी तथ्य का प्रयोग बदल सकता है। वे जिस रूप में हैं वैसे ही उनकी अनिवार्य उपयोगिता को यह 'जरूरी' नहीं होता। अतः जरूरी नहीं कि पानी पीने के लिए गिलास को 'चाहिए' ही की श्रेणी में रखा जाए। इसके विपरीत सत्य और अहिंसा ऐसे मूल्य हैं, जिनके बिना मानव जीवन में शांति कभी

नहीं आ सकती। ये दोनों मूल्य किसी भी व्यक्ति के जीवन में होने ही 'चाहिए'। उपरोक्त उदाहरण में तीसरा अंतर भी छुपा हुआ है कि मूल्य 'मूल्यवान' होते हैं और तथ्य 'अस्तित्ववान'। तथ्य 'अस्तित्ववान' होते हैं इसलिए जरूरी नहीं कि वे एक जैसा मूल्य रखें। गिलास जिसका अस्तित्व विद्यमान है, यदि वह प्लास्टिक का है तो उसका मूल्य 5-10 रुपये का, स्टील का है तो 20-25 रुपये का, सोने-चांदी का है तो उसका मूल्य हजारों रुपयों में हो सकता है। यानि गिलास जिस धातु (बाह्य तत्त्व) से बना है वह धातु ही उसका मूल्य अर्थात् कीमत बताती है। इस कीमत को चुकाकर 'प्राप्ति' के लिए मनुष्य शारीरिक श्रम करता है। इसके विपरीत सत्य और अहिंसा की बाजारवादी कीमत नहीं होती, जिन्हें शारीरिक श्रम कर 'प्राप्त' किया जा सके। यदि मानव को यह दोनों मूल्य 'चाहिए' तो उसे आंतरिक अर्हता प्राप्त करनी होगी जो बाह्य जगत से नहीं भाव जगत से जुड़ी होती है। इस प्रकार भारतीय चिंतन और दर्शन में मूल्य व्यक्तिपरक होते हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य दृष्टिकोण समाज को मूल्यों का नियंता स्वीकार करता है।

पश्चिमी चिंतन के अनुसार मूल्य सामाजिक विषय के अंग है। अरस्तु, प्लेटो, प्रोतागोरस, कांट आदि विचारकों ने मानव-मूल्यों को दर्शन के साथ जोड़ते हुए यह माना है कि मनुष्य सदैव परम सत्य की खोज में संलग्न रहते हुए आत्मा का बौद्धिक विकास करता है जो उसे विवेक सम्पन्न बनाता है। विवेक से मूल्य की उत्पत्ति होती है और मूल्य उसी परम सत्य का अंश होता है। प्राचीन पाश्चात्य चिंतकों के विपरीत आधुनिक चिंतक आत्मा के बौद्धिक विकास के स्थान पर मूल्यों को समाज के साथ जोड़ते हैं। नीत्शे जैसे विचारकों के लिए ईश्वर मर गया तो भौतिकतावादी चिंतकों की दृष्टि में मूल्यों का सम्बन्ध भौतिक योगक्षेम में जुड़ा है। मार्क्सवादी विचारधारा तो सामाजिक हित को व्यक्तिगत हित से अधिक महत्त्व देती है। समाज

के हित में यदि व्यक्ति की बलि चढ़ानी पड़े तो उसे इस से भी गुरेज नहीं है। वहाँ 'अर्थ' भौतिक विकास का केन्द्र बिन्दू है और अर्थ की प्राप्ति के लिए समाज व्यक्ति को भी प्रतिस्थापित कर सकता है। आर्थिक मूल्य मनुष्य के भौतिक विकास में सहायक होते हैं इसीलिए आज भौतिक मूल्य यदि नैतिकता से सम्बन्धित नहीं होते वे किसी भी समाज में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। नैतिकता के बिना कोई भी समाज उन्नति नहीं कर सकता। समाज और राष्ट्र के लिए नैतिक मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है। नैतिक मूल्यों के विघटन से समाज में भी विघटन आरम्भ हो जाता है। इसीलिए वर्तमान विश्व अपने ही हाथों घायल हो रहा है। मानव मूल्यों का सम्बन्ध जब तक व्यक्ति की अंतरात्मकता से जुड़ा रहा तब तक वे व्यक्ति को व्यक्ति से, समाज से, राष्ट्र से यहाँ तक कि उसे सम्पूर्ण विश्व से जोड़ने वाली शक्ति के रूप में बल देता रहा।

आधुनिक युग में अंतरात्मकता का स्थान सूचना और प्रौद्योगिकी ने ले लिया है जबकि मूल्य मानव की अनुभूति पर आश्रित होते हैं और अनुभूतियाँ परिस्थितियों पर आधारित होती हैं। परिस्थितियाँ समयानुरूप बदलती रहती हैं यही कारण है कि मूल्य भी सदैव एक जैसे या जड़ नहीं रह सकते। डॉ. रामदरश मिश्र इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि— "मूल्यों का बोध सर्जक को तात्कालिक जीवन संदर्भों से प्राप्त होता है। बहुत सी मान्यताएँ, मूल्य किसी युग में आकर पुरानी पड़ जाती हैं। अनेक मूल्य भी सारहीन सिद्ध हो जाते हैं। युग नए मूल्यों की खोज करता है, नए जीवन दर्शन बनते हैं। जागृत संवेदना और विश्लेषण शक्ति सम्पन्न बुद्धि इन मूल्यों की संक्रातियों को चेतना का अनुभव कराती है, नए मूल्यों की खोज करती है।"<sup>5</sup> प्रश्न यह है कि 'सूचना क्रांति' के युग और उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में मानवीय मूल्यों के लिए स्थान कहाँ बचा है? नूतन आधुनिक सभ्यता की ओर उन्मुख समाज में मूल्यों का निरन्तर हास हो रहा है।

आज का मनुष्य भी जीवन की चकाचौंध में खो गया है। भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति की कामना ने दया, ममता, प्रेम, सौहार्द, त्याग, परोपकार जैसे मूल्यों को भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, विश्वासघात जैसे अवगुणों से प्रतिस्थापित कर दिया है। जीवन के विविध क्षेत्रों को प्रभावित करने वाली सूचना क्रांति मीडिया के माध्यम से भौतिक और वैचारिक सम्पदा की लूट हेतु तीसरा विश्वयुद्ध छेड़ चुकी है। दौड़ती-भागती दुनिया में शब्द को 'ब्रह्म' के स्थान पर 'देवता' मानने वाले प्रिंट मीडिया यानि समाचार पत्र-पत्रिका को भी पढ़ने का समय कहाँ है? इलैक्ट्रॉनिक चैनलों की बाढ़ ने बुद्धि को वैचारिक कीच में लिपटाकर ऐसी पटरखनी दी है कि उसके भार तले मानवता कराहने लगी है। लाभ, प्रतिस्पर्धा और वर्चस्व इस नई बन रही दुनिया के नए मूल्य के तौर पर उभरने लगे हैं। बाजार और उससे जुड़ा धन सम्बन्धी लाभ प्रतिस्पर्धी को नीचे गिराकर बाजार पर अपनी पकड़ मजबूत कर, नए मूल्य बोध के तौर पर अपनी जगह बनाने लगे हैं। मानव-मूल्य हाशिये पर है तो बाजार जीवन के केन्द्र में है। बाजार की नैतिकता तो कब की नष्ट हो गई है। संवाद की जगह चीख-चिल्लाहट और माँ-बहन तक कि छिछालेदारी होने लगी है। छोटे-छोटे बच्चों के मुख से विज्ञापनों में बड़ों का उपहास तो उड़ाया ही जाता है बल्कि स्मार्ट फोन के जरिए अश्लीलता उनकी हथेली पर पहुँचा दी गई है। व्यक्ति की निजता और स्वतंत्रता की आड़ में अरबों रुपये का व्यापार भारतीय बाजार में करने वाली पोर्न-इंडस्ट्री की राजनेताओं से साँठ-गाँठ छुपी नहीं है। भारत तो इस समय दुनिया का सबसे बड़ा खुला बाजार है जहाँ कोई भी अपने लाभ के लिए राष्ट्र की अस्मिता को तार-तार कर सकता है। सबका कल्याण चाहने वाले साहित्य का स्थान भी पापुलर कल्चर ने ले लिया है। धर्म छोटे सिक्के की भाँति प्रयुक्त हो रहा है। आज हम सच में डॉ. धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में जी रहे हैं जहाँ जीवित, अंधे और दृष्टा मुर्दे



एक साथ पड़े हैं।<sup>6</sup> पुराने मूल्यों की शाश्वतता जहाँ खतरे में आ पड़ी है वहीं नए मूल्यों को आत्मसात करना चेतनशील मनुष्य के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। भूख, गरीबी, बेरोजगारी के फैलते आसमान के नीचे मानवीय गरिमा को बचाने के स्थान पर हाशिये पर खड़े मनुष्य के सामने— चमक, खनक और धमक के साथ सफलता की सीढ़ी चढ़ते कुपात्रों ने 'वंदनीय' और 'अवंदनीय' की विभाजक रेखा मिटाकर रख दी है। ऐसे में देश—दुनिया का युवा स्वयं को दिग्भ्रमित पा रहा है। क्योंकि—

**पुराने मूल्यों के साथ**

**जिया जाता नहीं,**

**अब—**

**पुराने नोटों का चलन**

**बंद हो गया है!<sup>7</sup>**

वह मनुष्य ही क्या जो आसानी से हार मान ले। जिजीविषा ही मनुष्य को जीवंत रखने वाली शक्ति है। यदि यह ना हो तो मनुष्य सभ्यता और संस्कृति का भवन कभी खड़ा नहीं कर पाता। समय के प्रभाव से भले ही पुराना भवन जीर्ण—क्षीर्ण हो गया है लेकिन नए का निर्माण तो करना ही होगा। मनुष्य आसानी से हार मान लेने वाला जीव नहीं है। संसार के ऊँचे से ऊँचे पर्वत, गहरे से गहरे सागर और शान्त आकाश को उसने अपने पाँवों तले रौंदा है। अतः यह दुष्ट सत्ताधारियों के जुल्मों सितम से डरकर लम्बे समय तक वह अपने अधिकारों से वंचित होना स्वीकार कर लेगा यह मान लेना ही बेवकूफी होगी। मनुष्य जाति के आदर्श तो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, सुकरात, गाँधी, सुभाष आदि रहे हैं जिनके आत्मबल के आगे पराक्रमी से पराक्रमी शत्रु भी परास्त हुए हैं। अतः गौरवशाली परम्परा का स्वामी मानव आज किसी से दबने को तैयार नहीं है। उसका उद्घोष है—

**"लोभी पेशकार की धमकी**

**टामी चपरासी के धक्के**

**खाली माली रौब गाँठते**

**तेरे छोड़े हुए उचक्के**

**बेकसूर इंसान किसी के**

**जूते के नीचे न रहेंगे**

**हम न सहेंगे, हम न सहेंगे.....!<sup>8</sup>**

यह कविता आम आदमी के बदलते भावबोध की परिचायक भी है। साथ ही यदि गड़राई से आँकें तो इसमें मूल्यों में बदलाव के संकेत भी छुपे हैं। दुनिया में कुछ भी अक्षय नहीं होता। समय की शिला से टकराकर प्रत्येक वस्तु, गुण, भाव में परिवर्तन अवश्य होता है। जैसे कल तक स्वामीभक्ति, वफादारी बड़े मूल्यों में गिने जाते थे। आज इन्हें हीनताबोध और बेवकूफी समझा जा रहा है। पन्ना धाय की कहानी भी सामंती विचारधारा को पुष्ट करने वाली मान ली गई है। त्याग, तपस्या, करुणा, अपरिग्रह जैसे मूल्यों से आज का मनुष्य कतराकर निकल जाना चाहता है। आधुनिक संदर्भों में इन्हें पिछड़ेपन की निशानी मान लिया गया है। आधुनिक संदर्भ से तात्पर्य है आज का समय और आज का समय है भूमंडलीकरण का वैश्विक यथार्थ जो दरअसल भूमंडलीकरण का भूमंडीकरण कर पूंजीवाद का ही पैशाचिक विस्तार है। इस पैशाचिक वृत्ति ने प्रकृति के विध्वंस की प्रक्रिया को इस कदर बढ़ा दिया है कि प्रकृति और मानवीय अस्तित्व पर ही खतरा मंडराने लगा है। जो भी मनुष्य स्वयं को बुद्धिमान समझता है वह धन कमाने की रेस में शामिल हो जाता है। 'अर्थ' ही मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य और उपलब्धि बन गया है। पूंजी की चमक ने तीसरी दुनिया को चौंधियाकर उससे उसकी निजी मूल्यवान पहचान छीन ली है। कल तक मानवता 'गुलामी' और 'दास—प्रथा' की जंजीरों से मुक्ति पाने के लिए रक्त बहा रही थी तो आज नशीले पदार्थों 'ड्रग्स' की तर्ज पर ह्यूमन ट्रैफिकिंग (मानव—तस्करी) हो रही है। इस

वैश्विक बाजार का कोई मूल्य (Value) नहीं है। खरीदना-बेचना इसका व्यवहार है और मुनाफा कमाना इसका मकसद। यह बाजार 'शेयर' करना नहीं जानता पर शेयर बाजार की उठा-पटक में गहरी पैठ रखता है। बाजार भी धोखे भरा विश्वास अर्थात् प्रपंच बेच रहा है। पूंजी-हर सामाजिक-मानवीय मूल्य (सोशल-ह्यूमन वेल्यू) को खत्म कर रही है। यह नैतिकता की हदों को तोड़कर मानव-समाज का अमानुषीकरण कर रही है। कबीर की भाषा में कहें तो इस माया महाठगिनी ने मीठी खॉड से (कबीरा माया मोहिनी जैसे मीठी खॉड) सबको ललचा लिया है। समय का तकाजा है कि दुनिया W.T.O (विश्व व्यापार संगठन) और I.M.F. (अन्तरराष्ट्रीय पूंजी कोष) की गिरपत से बाहर निकले वरना भौतिकतावादी कीच में धंसकर मनुष्य पुनः हिंसक पशु में तब्दील हो जाएगा।

इतिहास साक्षी है कि मनुष्य चुनौतियों से घबराता नहीं है। उसकी आँखें भले ही देर से खुले वह जागता अवश्य है और जागृत मानव अच्छाई-बुराई ग्राह्य-अग्राह्य में भेद करना जानता है। अतः स्पष्ट है अपने युग की समस्याओं को समझकर उनकी गहराई से पड़ताल करते हुए मानव नए सोपानों की खोज अवश्य करेगा पर पुरानों से जो भी ग्राह्य है उसे भी नहीं त्यागेगा। जैसे वह धार्मिकता के आवरण से मुक्त होने की कामना करता है धर्म से नहीं क्योंकि धर्म तो धारण करने वाले गुणों का नाम है। 'धारयति इति सः धर्मः'। दया, ममता, करुणा, अहिंसा, त्याग,

परोपकार जैसे मूल्य ही तो मानव को मानव बनाते हैं यही मानव धर्म है। इस मानव धर्म की पुर्नस्थापना में उसे चाहे जितना संघर्ष करना पड़े वह करेगा अन्यथा अमूल्यक समाज की अराजकता तो प्रकृति और मानव दोनों को नष्ट कर देगी जिसे कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

## संदर्भ

1. साहित्य का समाजशास्त्र- डॉ. नगेन्द्र, पृ. 15, प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. नई कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य, निबन्ध, मुक्तिबोध, पृ. 45-46, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर।
3. हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य- डॉ. रमेश चन्द्र लावनिया, पृ. 11
4. बृहदारण्यक उपनिषद् „-†-†-
5. माध्यम, जुलाई 1964 - डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. 36
6. अंधा युग- डॉ. धर्मवीर भारती, पृ. 56, किताब महल, दिल्ली।
7. पहले बौर - रचना सारस्वत, पृ. 15, इतिहास शोध संस्थान, दिल्ली 1991
8. इतिहास दुबारा लिखो- रमेश रंजक, पृ. 14, सुखदा प्रकाशन, दिल्ली 1977